प्रतिभामूर्ति पण्डित टोडरमलजी

महामना आचार्य भूतबलि तथा पुष्पदन्तने षट्खण्डागम सिद्धान्त और आचार्य गुणधरने कसाय-पाहुड सिद्धान्त-ग्रन्थोंका प्रणयन करके भगवान् महावीरके अवशिष्ट तत्त्वज्ञान और सद्धर्मका विस्तार किया था। यह समय लगभग विक्रमकी पहली शताब्दीका है। कुछ शताब्दियों तक इन सिद्धान्त-ग्रन्थोंका पर्याप्त पठन-पाठन बना रहा—इनपर कई टीकाएँ, निबन्ध और रचनाएँ लिखी गईं। परन्तु कुछ काल बाद इनका पठन-पाठन विरल हो गया और टीकादि ग्रन्थ लुप्त अथवा अनुपलब्ध हो गये। विक्रमकी नवमी शतीमें जैन वाङ्मयके नभमें एक दीप्तिमान् प्रतिभा-प्रकाशपुञ्ज विद्वन्नक्षत्रका आविर्भाव हुआ, जिसका नाम आचार्य वीरसेन स्वामी है। वीरसेन स्वामीने उक्त सिद्धान्त-ग्रन्थोंपर विद्वत्ता एवं पाण्डित्यपूर्ण विशाल और महान् धवला तथा जयधवला टीकाएँ लिखीं, जो लगभग नब्बे हजार श्लोक प्रमाण है। जयधवलाके दो तिहाई भागको जिनसेन स्वामीने लिखा, जो वीरसेन स्वामीके बुद्धिमान प्रधान शिष्य थे। इन टीकाओंके आधारसे विक्रम सं० की ग्यारहवीं शताब्दीमें नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने गोम्मटसार सिद्धान्तग्रन्थकी रचना की। गोम्मटसार जैन समाजको इतना प्रिय हुआ कि इसके बननेके बाद विद्वानोंमें प्रायः उसीका पठन-पाठन रहा और केशववर्णी, द्वितीय नेमिचन्द्र, अभयचन्द्र आदि विद्वानाचार्यों द्वारा विस्तृत एवं सरल कनड़ी तथा संस्कृत टीकाएँ इसपर लिखी गईं। इस तरह वीरसेन स्वामी द्वारा पुनः प्रवर्तित सिद्धान्तज्ञान-परम्परा तेरहवीं शताब्दी तक अनवच्छिन्न रूपसे चली आई। परन्तु तेरहवीं शताब्दीके बाद अठारहवीं शताब्दी पर्यन्त उसका पठन-पाठन, लिखना-लिखाना प्रायः बन्द हो गया और उनके ज्ञाताओंका अभाव हो गया।

विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें जयपुरकी पवित्र उर्वरा भूमिपर एक दूसरे बहु प्रकाशमान तेजस्वी नक्षत्रका उदय हुआ, जिसका प्रकाश चारों तरफ फैला और जो 'पंडित टोडरमल' इस नामसे विख्यात एवं विश्रुत हुआ। हम इन्हें इनकी असाधारण विद्वत्ता और असाधारण कार्यसे दूसरे वीरसेन स्वामी कह सकते हैं। वीरसेनस्वामीने जैसा धवलादि टीकाओंके निर्माणका कार्य किया, प्रायः वैसा ही इन महाविद्वान् पंडित टोडरमलजीने किया। जब गोम्मटसार, त्रिलोकसार आदि गहन सिद्धान्तग्रन्थोंके जानकार दुर्लभ थे—उनका प्रायः अभाव था और तत्त्वज्ञानपरम्परा विच्छिन्न हो गयी थी, उस समय इन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा और अद्भुत क्षयोपशमसे गोम्मटसारादि सिद्धान्तग्रन्थोंके गहन एवं सूक्ष्म तत्त्वों व रहस्योंको ज्ञातकर उनपर पैंसठ हजार श्लोक प्रमाण 'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका' नामकी विशाल भाषा-टीका रची और अनेकों तत्त्वजिज्ञासुओंको उसके मर्मसे परिचित कराया। गुरुमुखसे पढ़कर पढ़े विषयको दूसरोंके लिये समझाना अथवा उसपर कुछ लेखादि लिखना सर्वथा सरल है। परन्तु जिस गहन तथा सूक्ष्म विषयका उस पर्यायमें किसीसे परिचय अथवा ज्ञान नहीं हुआ उस विषयको दूसरोंके लिये बड़ी सरलतासे समझाना अथवा उसपर विस्तृत टीकादि लिखना बिना असाधारण प्रतिभा और पूर्वजन्मीय विलक्षण क्षयोपशमके असम्भव है। उनका बनाया मोक्षमार्गप्रकाशक हिन्दी भाषाका बेजोड़ गद्यग्रन्थ है। भारतीय समग्र हिन्दीगद्य-साहित्यमें इसकी तुलनाका एक भी ग्रन्थ दृष्टिगोचर नहीं होता। क्या भाषा, क्या भाव, क्या पदलालित्य और क्या सरलता सबसे भरपूर है। इस ग्रन्थने जैन परम्परामें थोड़ेसे ही समयमें वह महत्त्व प्राप्त कर लिया है जो हिन्दुओंके यहाँ गीताने, मुसलमानोंके यहाँ कुरानने और ईसाइयोंके यहाँ बाईबिलने प्राप्त किया है। काश! यदि यह ग्रन्थ अधूरा न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता, पण्डितजी उसे पूरा कर जाते, तो वह अकेला ही हजार ग्रन्थोंको पढ़नेकी जरूरतको पूरा कर देता। फिर भी वह जितना है उतना भी गीतादि जैसा महत्त्व रखता है। पण्डितजीने इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय आदि ग्रन्थोंपर भी टीकाएँ लिखी हैं और इस तरह वीरसेनस्वामीकी तरह इनकी समग्र रचनाओं-का प्रमाण लगभग एक लाख श्लोक जितना है। ऐसे असाधारण विद्वान्को प्रतिभामूर्ति एवं दूसरे वीरसेन-स्वामी कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। सिर्फ अन्तर यही है कि एक आचार्य हैं तो दूसरे गृहस्थ। एकने स्वतंत्र संस्कृत व प्राकृतमें टीकाएँ लिखीं तो दूसरेने पूर्वाधारसे राष्ट्रभाषा हिन्दीमें। लेखनका विस्तार, समा-लोचकता, शंकासमाधानकारिता, दार्शनिक-विज्ञता, सिद्धान्त-मर्मज्ञता, वीतरागधर्मकी अनन्य-उपासकता तथा परोपकारभावना दोनों विद्वानोंमें निहित हैं। दोनोंका साहित्य ज्ञाननिधि है और दोनों ही अपने-अपने समयके खास युगप्रवर्त्तक हैं। अतएव पण्डित टोडरमलजीको आचार्य अथवा ऋषि नहीं तो आचार्यकल्प अथवा ऋषिकल्प तो हम कह ही सकते हैं।

पण्डितजी इतने प्रतिभावान् होते हुए भी जब अपनी लघुता प्रकट करते हैं और अपनेको 'मन्द बुद्धि' लिखते हैं तो उनकी सात्त्विकता, प्रामाणिकता और निरभिमानताका मूर्तिमान चित्र सामने आ जाता है। उनकी इन पंक्तियोंको पढ़िये—

"जातैं गोम्मटसारादि ग्रन्थनि बिषैं संदृष्टिनि करि जो अर्थ प्रकट किया है सो संदृष्टिनिका स्वरूप जानै विना अर्थ जाननेमें न आवे तातैं मेरी मति अनुसारि किंचिन्मात्र अर्थ संदृष्टिनिका स्वरूप कहौं हौं तहाँ जो किछू चूक होइ सो मेरि मंद बुद्धिकी भूलि जानि बुद्धिवंत कृपा करि शुद्ध करियो"—अर्थसंदृष्टिअधिकार।

यही कारण है कि साधर्मी भाई रायमलके[1], जो पण्डितजीके गोम्मटसारादिकी टीका लिखनेमें प्रेरक थे और जैन शासनके सार्वत्रिक प्रचारकी उत्कट भावनाको लिये हुए एक विवेकवान धार्मिक सत्पुरुष थे, लिखे अनुसार पण्डितजीके पास देश-देशके प्रश्न आते थे और वे उनका समाधान करके उनके पास भेजते थे। इनकी इस परिणतिका ही यह प्रभाव था कि उस समय जयपुरमें जो जैनधर्मकी महिमा प्रवृत्त हो रही थी वह रायमल साधर्मीके शब्दोंमें 'चतुर्थ कालवत्' थी।

यदि इस प्रतिभामूर्ति विद्वान्का उदय न हुआ होता तो आज जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोंके अभ्यासी विद्वान् व स्वाध्यायप्रेमी दिख रहे हैं वे शायद एक भी न दिखते और जयपुर बादको पं० जयचन्दजी, सदा-सुखजी आदि विद्वन्मणियोंको पैदा न कर पाता। इस सबका श्रेय जयपुरके इसी महाविद्वान्को है। साधर्मी भाई रायमलने यह ठीक ही लिखा है[2] कि—"अबारके अनिष्ट काल विषै टोडरमलजीके ज्ञानका क्षयोपशम विशेष भया। ए गोम्मटसार ग्रन्थका बंचना पाँच सै बरस पहली था। ता पीछे बुद्धिकी मंदता करि भाव सहित बंचना रहि गया। अबैं फेरि याका उद्योत भया। बहुरि वर्तमान काल विषै यहाँ धर्मका निमित्त है तिसा अन्यत्र नाहीं।"

पण्डित टोडरमलजी भारतीय साहित्य और जैन वाङ्मयके इतिहासमें एक महाविद्वान् और महा-साहित्यकारके रूपमें सदा अमर रहेंगे। उनके सिद्धान्तमर्मज्ञता, समालोचकता और दार्शनिक अभिज्ञता आदि कितने ही ऐसे गुण हैं, जिनपर विस्तृत प्रकाश डालना चाहता था; परन्तु समयाभाव और शीघ्रताके कारण उसे इस समय छोड़ना पड़ रहा है। वस्तुतः पं० टोडरमलजीपर एक स्वतंत्र पुस्तक ही लिखी जाना चाहिए, जैसी तुलसीदासजी आदिपर लिखी गई हैं।

●

१-२. देखो, 'साधर्मी भाई रायमल' लेखगत उनका आत्मपरिचयात्मक लेखपत्र, वीर-वाणी वर्ष १, अंक २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org